International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(1): 120-124

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(1): 120-124
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 06-11-2019
Accepted: 10-12-2019

डॉ0 संजीव कुमार
संहिता संस्कृत सिद्धॉत विभाग,
विवेक कॉलेज ऑफ आयुर्वेदिक साईसेंस एण्ड हॉस्पिटल, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत।

Corresponding Author:
डॉ0 संजीव कुमार
संहिता संस्कृत सिद्धॉत विभाग,
विवेक कॉलेज ऑफ आयुर्वेदिक साईसेंस एण्ड हॉस्पिटल, बिजनौर, उत्तर प्रदेश, भारत।

भट्टारक सकलकीर्ति द्वारा प्रणीत प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में वर्णित 'सप्त तत्व एवं षड्द्रव्य'

डॉ0 संजीव कुमार

प्रस्तावना

भट्टारक सकलकीर्ति संस्कृत भाषा के प्रोढ़ विद्वान् थे। इनके द्वारा संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे गये, जिनमें प्रमुख रूप से मूलाचार प्रदीप, तत्त्वार्थसार दीपक, प्रश्नोत्तर श्रावकाचार और सिद्धान्तसार दीपक आदि प्रसिद्ध हैं।

प्रश्नोत्तर श्रावकाचार संग्रह के द्वितीय परिच्छेद में सप्त तत्वों जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष तथा षड् द्रव्यों में धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल और जीव का विस्तार रूप में वर्णन किया गया है। जो मनुष्य की जीवन में महत्त्वपूर्ण हैं।

सप्त तत्त्व – जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सप्त तत्त्व कहलाते हैं। कहा भी गया है –

जीवाजीवास्रवा बन्धः संवरो निर्जरा तथा।
मोक्षः सप्तैव तत्वानि भाषितानि जिनागमे।।

1. जीव – जो द्रव्य प्राण और भाव प्राणों से अनादि काल से लेकर जीवित रहता है और आगे भी बार–बार जीवेगा और ऐसा होने पर भी जिसका स्वरूप निश्चल है, उसको जीव कहते है। जीव दो प्रकार के हैं – संसारी और सिद्ध। कर्म सहित को संसारी जीव और कर्म सहित को सिद्ध जीव कहते हैं। यदि जाति आदि का भेद न भी गिना जाये तो भी संसारी जीव छह प्रकार के हैं – त्रस और पाँच प्रकार के स्थावर जीव हैं। पृथ्वी कायिक जीवों की योनियाँ सात लाख हैं, जल कायिक की सात लाख, अग्निकायिक की सात लाख, वायु कायिक की सात लाख, नित्य निगोद की सात लाख, इतर निगोद की सात लाख, वनस्पति कायिक की दश लाख, द्वीन्द्रिय जीवों की दो लाख, त्रीन्द्रिय जीवों की दो लाख, चौन्द्रिय जीवों की दो लाख, तिर्यंत्र पन्चेन्द्रिय जीवों की चार लाख, देवों की चार लाख, नारकियों की चार लाख और मनुष्यों की चौदह लाख, इस प्रकार जीवों की सब चौरासी लाख योनियाँ हुई।[1]

त्रसकायिक जीव चार प्रकार के माने गये हैं – द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पन्चेन्द्रिय जीव। इनमें पन्चेन्द्रिय जीव संज्ञी और असंज्ञी के भेद से दो प्रकार के हैं – जो जीव शिक्षा, उपदेश, आलाप के ग्रहण करने वाले हैं, जिनके मन प्राण पाया जाता है, वे संज्ञी कहलाते हैं। इनके विपरीत जीवों को असंज्ञी जीव कहते हैं। इन्द्रियॉ पॉच होती हैं – स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र। इनका विषय क्रमशः स्पर्श, रस, गन्ध, रूप और शब्द है। गिंडोला, जौंक कौंडी, कृमि, शंख और इन्द्रगोप आदि अनेक आकार वाले द्वीन्द्रिय जीव कहे गये हैं। जूँ, कीड़ी, लींख, कुन्थु, खटमल, बिच्छू आदि विचित्र आकारों से संयुक्त त्रीन्द्रिय जीव हैं। पतंग, मक्खी, डाँस, मच्छर और भौंरा।

त्रैलोक्य के अग्रभाग पर चढ़ने के लिए सोपान मार्ग के समान चौदह गुणस्थान बतलाये हैं – (1) मिथ्यादृष्टि, (2) सासादन, (3) मिश्र, (4) असंयतसम्यग्दृष्टि, (5) संयतासंयत, (6) प्रमत्तसंयत, (7) अप्रमत्त संयत, (8) अपूर्व करण, (9) अनिवृत्तिकरण, (10) सूक्ष्म लोभ, (11) उपशान्तमोह, (12) क्षीणमोह, (13) सयोगिजिनेन्द्र, (14) अयोगिजिनेन्द्र।

इन चौदह गुणस्थानों में जीव तत्व का वास्तविक तथ्य जाना जाता है।[2]

इस प्रकार गति, काय, योग, वेद, लेश्या, कषाय, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, गुणस्थान एवं अधिगमज सम्यग्दर्शन नामादि निक्षेप और सत् संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव तथा अल्पबहुत्व इन आठ अनुयोगों की अपेक्षा जीवतत्त्व के अनेक भेद होते हैं।[3]

गति – गति नामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय को अथवा चारों गतियों में गमन करने के कारण को गति कहते हैं। गति के चार भेद हैं। (1) नरकगति (2) तिर्यग्गति (3) मनुष्य गति (4) देवगति।

इन्द्रिय – इन्द्रियों की अपेक्षा जीव के पाँच भेद हैं – एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पन्चेन्द्रिय।

काय – जाति नामकर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को काय कहा है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति ये पाँच स्थावर कहलाते हैं। शेष त्रस जीव कहलाते है। इन छहों को मिलाकर जीव के छह निकाय हैं।

योग – काय, वचन और मन की क्रिया योग है। पातन्जल योगदर्शन में चित्तवृत्ति के निरोध को योग कहा गया है – ''योगश्चित्त वृत्ति निरोधः'' जैन ग्रन्थों में इसका यह अर्थ कहीं–कहीं देखने को मिलता है लेकिन यहाँ इसका अथ यही है, जो ऊपर दिया गया है।

वेद – पुरूष, स्त्री और नपुंसक वेदकर्म के उदय से भावद्रव्य, भावस्त्री,
भाव नपुंसक होता है और नाम कर्म के उदय से द्रव्य पुरूष, द्रव्य स्त्री और द्रव्य नपुंसक होता है। यह भाववेद और द्रव्यवेद प्रायः करके समान होता है, परन्तु कहीं–कहीं विषम भी होता है।

लेश्या – जिसके द्वारा जीव अपने को पुण्य और पाप से लिप्त करे, उसको लेश्या कहते है। तत्त्वार्थवार्तिक में कषाय के उदय से अनुरक्त योग प्रवृत्ति को लेश्या कहा है। यह कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म और शुक्ल के भेद से छह प्रकार की होती हैं।

कषाय – जो आत्मा को कषै अर्थात् चारों गतियों में भटकाकर दुःख दे, उसे कषाय कहते है। इसके चार भेद हैं –क्रोध, मान, माया और लोभ।

ज्ञान – जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक समस्त द्रव्य और उनके गुण तथा अवस्थाओं को जाने, उसे ज्ञान कहते है। यह मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय और केवल के भेद से पाँच प्रकार का है। इनके आदि के दो परोक्ष नाम हैं, शेष तीन प्रत्यक्ष हैं।

दर्शन – सामान्य–विशेषात्मक पदार्थ के विशेष अंश का ग्रहण न करके केवल सामान्य अंश का जो निर्विकल्प रूप से ग्रहण होता है, उसे दर्शन कहते हैं।

चरित्रादि – माह और क्षोभ से रहित आत्मा की स्थिति का नाम चारित्र है।[4]

जीव के भेद – जीवों के भव्य और अभव्य इस प्रकार दो भेद हैं। जिस प्रकार उड़द आदि अनाज में कुछ ऐसे होते हैं जो पक जाते हैं, सीझ जाते हैं, और कुछ तो ऐसे होते हैं कि प्रयत्न करने पर भी नहीं पकते हैं, न ही सीझते हैं। उसी प्रकार जीवों में भी कुछ जीव तो ऐसे होते हें जो कर्म नष्टकर सिद्ध अवस्था को प्राप्त हो सकते हैं और कुछ ऐसे होते हैं जो प्रयत्न करने पर भी सिद्ध अवस्था को प्राप्त नहीं हो सकते। जो सिद्ध हो सकते हैं, वे भव्य कहलाते हैं, और जो सिद्ध नही हो सकते, वे अभव्य कहलाते हैं। इस तरह भव्य और अभव्य की अपेक्षा जीव के दो भेद हैं।[5]

2. अजीव का स्वरूप – अजीव तत्त्व के पाँच भेद हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल, चार तो ये हैं, ये चारों ही पदार्थ उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य स्वरूप है तथा पाँचवाँ अजीव तत्त्व पुद्गल है उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुण हैं और वह अणु स्कंघ आदि भेद से अनेक प्रकार का है। यह पुद्गल जीवों को सुख दुःख भी देता है।[6] तात्पर्य यह है कि पुद्गल द्रव्य शरीर आदि अनेक प्रकार परिणमन रूप शक्ति से युक्त हैं। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परिणाम स्वरूप जो इन्द्रियों के ग्रहण करने योग्य हैं वे सब पुद्गल द्रव्य हैं। पुद्गल द्रव्य संख्या में जीव राशि से अनंत गुना हैं। पुद्गल द्रव्य की ऐसी अपूर्व शक्ति है कि जीव का जो केवल स्वभाव है, वह भी उसकी अपूर्व शक्ति से विनाश को प्राप्त होता है।[7]
धर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेश वाला है और अमूर्त है तथा जिस प्रकार मछलियों के चलने में पानी सहायक होता है उसी प्रकार यह धर्मद्रव्य भी जीव और पुद्गलों के गमन करने में सहायक होता है।[8] पुद्गल जीवों को जीवन, मरण और सुख दुःख करते हैं। अणु और स्कन्ध के भेद से पुद्गल द्रव्य के दो भेज कहे गये हैं। पुद्गल को छह प्रकार का कहा है – (1) स्थूल–स्थूल जैसे – पृथ्वी। (2) स्थूल जैसे – जल। (3) स्थूल सूक्ष्म जैसे – छाया। (4) सूक्ष्मस्थूल जैसे – नेच बिना शेष चार इन्द्रियों के विषय–रस, गन्ध आदि (5) सूक्ष्म जैसे–कर्म–वर्गणा (6) सूक्ष्म सूक्ष्म जैसे – परमाणु।[9]
अधर्म द्रव्य अमूर्त है, क्रिया रहित है और जिस प्रकार पथिकों के ठहरने में छाया सहायक होती है उसी प्रकार यह अधर्म द्रव्य भी जीव पुद्गलों के ठहरने में सहायक होता है।
आकाश के दो भेद हैं – लोकाकाश और अलोकाकाश।

लोकाकाश – जो जीवादिक समस्त पदार्थों को जगह दे सके, उसे आकाश कहते हैं। जो समस्त द्रव्यों से भरा हुआ है, और जिसमें असंख्यात प्रदेश हैं उसको लोकाकाश कहते है। यह लोकाकाश भी अनश्वर है, इसका कभी नाश नहीं होता है।

अलोकाकाश – अलोकाकाश में अनंत प्रदेश हैं वह अकेला है। उसमें अन्य कोई द्रव्य नहीं है। वह अमूर्त है, नित्य है और जैन शास्त्रों के द्वारा ही चतुर पुरुषों को उसका ज्ञान होता है। घड़ी, घण्टा, दिन आदि को व्यवहार काल कहते हैं। द्रव्यों की पर्यायों को बदलने वाला यह व्यवहार काल ही है। यह व्यवहार काल अनित्य है और सूर्य चन्द्रमा आदि घूमते हुए ज्योतिषी देवों के विमानों से मालूम होता है। निश्चय ही काल अमूर्त है और क्रिया रहित है। उसके भिन्न–भिन्न असंख्यात प्रदेश हैं और वे अलग–अलग एक–एक करके लोकाकाश के एक–एक प्रदेश पर ठहरते हैं।

3. आस्रव का स्वरूप – कर्मों के आने के कारणों को आस्रव कहते हैं। मिथ्यात्व, अविरतियोग, कषाय और प्रमाद ये सब कर्मों के आने के कारण हैं अर्थात् इनसे ही कर्म आते हैं।[10] हरिवंशपुराण में आस्रव का लक्षण इस प्रकार दिया है – ''काय, वचन और मन की क्रिया को योग कहते है। वह योग ही आस्रव कहलाता है। उनमें शुभयोग योग शुभाश्रव का और अशुभयोग अशुभास्रव का कारण है।[11]
विसंवाद रहित आचरण करना और मन, वचन, काय की उज्ज्वल वृत्ति रखना शुभनामकर्म के आस्रव के कारण है। विसंवाद करना और योगों की कुटिलता रखना निन्दनीय अशुभनामकर्म के आस्रव के कारण हैं। अपनी प्रशंसा करना, अन्य की निन्दा करना, अपने असत्य गुणों को प्रकट करना और दूसरों के सद्गुणों को भी आछादित करना, इत्यादि कार्यों से जीवन नीचगोत्र कर्म का आस्रव करता है। इनसे विपरीत कार्यों के करने पर महापुरूषों के द्वारा प्रार्थनीय उच्च गोत्र को जीव शीघ्र ही प्राप्त करता है। दूसरों के दान, लाभ, वीर्य, भोग और उपभोग में विघ्न करने वाले जीव दान,

लाभ, वीर्य, भोग और उपभोग को नहीं पाते है,ऐसा जानकर विघ्न से भयभीत पण्डितजनों को मन, वचन और काय से किसी के भी लाभ, भोग–उपभोगादि में विघ्न नहीं करना चाहिए।[12]

आस्रव के भेद – आस्रव के दो भेद हैं – (1) साम्परायिक आस्रव (2) ईर्यापथ। मिथ्यादृष्टि से लेकर सूक्ष्मषाय गुणस्थान तक के जीव सकषाय हैं और वे प्रथम साम्परायिक आस्रव के स्वामी हैं उपशान्त कषाय से लेकर सयोग केवली तक के जीव अकषाय हैं और वे ईर्यापथ आस्रव के स्वामी है।[13]

बन्ध का स्वरूप – बुद्धिमान् लोग जीव और कर्म के सम्बन्ध होने को बन्ध कहते हैं। यह कर्म बन्ध अनन्त दुःखों को देने वाला है, दाह अथवा जलन रूपी अग्नि के लिए महाईंधन के समान है। जिस प्रकार शरीर पर तैल लगा लेने से उस पर धूल आकर जम जाती है, उसी प्रकार राग द्वेष आदि दोषों से दूषित होने पर जीव के भी कर्मों का समूह आकर बन्ध को प्राप्त हो जाता है।[14] क्रोधादि कषायों से मुक्त जीवों के द्वारा जो कर्म योग्य पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं, वह बन्ध कहलाता है। उस बन्ध के कारण मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय और योग हैं।[15]

मिथ्यादर्शन के भेद – मिथ्यादर्शन पाँच प्रकार का माना जाता हैं –

1. **एकान्त मिथ्यादर्शन** – यही है, इसी प्रकार का है, इस प्रकार धर्म और धर्मी में एकान्तरूप अभिप्राय रखना एकान्त मिथ्यादर्शन है। जैसे यह समस्त जगत परब्रह्मरूप ही है या सभी पदार्थ अनित्य ही हैं या नित्य हैं।
2. **विपर्यय मिथ्यादर्शन** – सग्रन्थ को निर्ग्रन्थ मानना, केवली को कवलाहारी मानना और स्त्री सिद्ध होतीहै, इत्यादि मानना विपर्यय मिथ्यादर्शन है।
3. **संशय मिथ्यादर्शन** – सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष के मार्ग हैं या नहीं इस प्रकार किसी एक पक्ष को स्वीकार नही करना संशय मिथ्यादर्शन है।
4. **विनयिक मिथ्यादर्शन** – सब देवता और सब मतों को एक समान मानना वैनयिक मिथ्यादर्शन है।
5. **अज्ञानिक मिथ्यादर्शन** – हिताहित की परीक्षा से रहित होना अज्ञानिक मिथ्यादर्शन है।[16]

अविरति – पाँच स्थावर और त्रस इन छह काय के जीवों की हिंसा का त्याग नहीं करना तथा पाँच इन्द्रिय और मन को वश में नहीं करना यह बारह प्रकार की अविरति है।

कषाय – नौ कषायों के साथ मिलकर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ आदि के भेद से हैं।[17]

योग – सत्य मनोयोग, असत्यमनोयोग, उभयमनोयोग और अनुभयमनोयोग के भेद से मनोयोग चार प्रकार के हैं। सत्यवचन योग, असत्य वचनयोग, उभयवचनयोग और अनुभयवचन योग के भेद से वचन योग के चार भेद हैं तथा औदारिक काययोग, औदारिक मिश्रकाय योग, वैक्रियिक काययोग, वैक्रियिक मिश्रकाययोग और कार्मणकाय योग के भेद से काययोग के पाँच भेद हैं। इस प्रकार सब मिलाकर योग के तेरह भेद हैं।[18]

बन्ध के भेद – प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से वह बन्ध प्रवीण पुरुषों ने चार प्रकार का कहा है। इस बन्ध के द्वारा ही जीव संसार में परिभ्रमण करता है।
ज्ञानावरणादिक कर्मों के ज्ञानादिक के आवरण करने के स्वभाव को प्रकृति बन्ध कहते हैं। बन्धे हुए कर्म जितने समय तक आत्मा से संलग्न रहेंगे, उतने काल की मर्यादा को स्थिति बन्ध कहते हैं। कर्मों के फल देने के विपाक को अनुभाग बन्ध कहते हैं और आये हुए कर्म परमाणुओं में ज्ञानावरणादिक रूप से उनके विभाग होने को प्रदेश बन्ध कहते है। योग से प्रकृति और प्रदेश बन्ध होता है, तथा कषाय से स्थिति और अनुभाग बन्ध होता है। जब कषाय उपशान्त या क्षीण हो जाते है, तब कर्मों का स्थिति बन्ध नहीं होता है, अतएव कषाय छोड़ने योग्य हैं। कषाययुक्त चित्त वाला मनुष्य कर्मों को ग्रहण करता है और कषाय–रहित चित्तवाला मनुष्य कर्मों को छोड़ता है। इस प्रकार कर्मों के बन्ध और मोक्ष विषयक विधिक कर्म–बन्धन से रहित है।[19]

(5) संवर का स्वरूप – आस्रव का रुक जाना संवर कहलाता है, यह संवर ही अनन्त कर्म समूह को नाश करने वाला है और मोक्ष सुख देने वाला है।[20] पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति–सहित अनेक भेद वाला चारित्र संवर का कारण है।[21] जबकि हरिवंशपुराण में तीन गुप्तियाँ, पाँच समितियाँ, दश धर्म, बारह अनुप्रेक्षायें, पाँच चारित्र और बाईस परिषहजय को अवान्तर विस्तार सहित संवर के कारण है[22] और वह संवर दो प्रकार का है – द्रव्यसंवर और भावसंवर।[23]

1. **द्रव्यसंवर** – गुप्ति–समिति आदि के द्वारा क्रोधादि कषायों के निरोध से कर्मों का जो निरोध होता है वह द्रव्यसंवर होता है।[24]
2. **भावसंवर** – पापों के नाश करने वाले आचार्यों ने क्रोध, लोभ, भय और मोक्ष के निरोध को जीवों का भावसंवर कहा है।[25]

(6) निर्जरा स्वरूप – कर्मों के एकदेश क्षय होने को निर्जरा कहते हैं। वह दो प्रकार की होती है – अविपाक निर्जरा और सविपाक निर्जरा।

(प) अविपाक निर्जरा – जो ज्ञान, ध्यान और तप के द्वारा पहिले के इकट्ठे किये हुए कर्म नष्ट होते हैं उसको अविपाक निर्जरा कहते हैं।[26] जिस प्रकार आम आदि फलों को उपाय द्वारा असमय में ही पका लिया जाता है, उसी प्रकार उदयावली में अप्राप्त कर्म की तपश्चरण आदि उपाय से निश्चित समय से पूर्व ही उदीरणा द्वारा जो शीघ्र निर्जरा की जाती है वह अविपाक निर्जरा है।[27]
(पप) सविपाक निर्जरा – इस अविपाक निर्जरा को मुनि लोग ही करते हैं। यह निर्जरा स्वर्ग मोक्ष की कारण है तथा जो कर्मों के विपाक से होती है, कर्म अपना फल देकर नष्ट हो जाते हैं। उसको सविपाक निर्जरा कहते हैं। यह सविपाक निर्जरा अन्य अनेक कर्मों का आस्रव करने वाली है।

(7) मोक्ष का स्वरूप – जीव कर्मों के सम्बन्ध के छूट जाने को अर्थात् समस्त कर्मों के नाश हो जाने को मोक्ष कहते हैं। संवर निर्जरा आदि को धारण करने वाले मुनियों के तप चारित्र आदि से वह मोक्ष प्राप्त होता है। जिस प्रकार किसी बन्धन से बन्धे हुए पुरुष को छोड़ देने से सुख होता है उसी प्रकार कर्मों से बन्धे हुए जीव को उन कर्मों के नाश हो जाने से अनंत सुख प्राप्त होता है। मोक्ष का सुख स्वाभाविक है, अनन्त है फिर कभी भी नष्ट नहीं होता, संसार में कोई भी इसकी उपमा नहीं है। संसार के परिभ्रमण से सर्वथा रहित है और आत्यन्तिक है।[28]

मोक्ष का उपाय – मोक्ष का उपाय ध्यान और अध्ययन रूप एक हेतु से होता है तथा सबसे पहले वह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों के समुदाय रूप है।[29] अर्थात् सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र तीनों मोक्ष मार्ग के साधन है।[30]

षड् द्रव्य विवेचन

द्रव्य का लक्षण – आचार्य कुन्दकुन्द ने अपने प्रवचनसार के ज्ञेयाधिकार के प्रारम्भ में द्रव्य का लक्षण इस प्रकार दिया है –

अपरिचत्तसहावेणुप्पादव्व यधुवत्तसंजुत्तं।
गुणवं च सपज्जायं जंत ं दव्वंति वुच्चंति।।

अर्थात् जो अपने अस्तित्व स्वभाव को नहीं छोड़ते हुए उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त होने के साथ गुणवान् और पर्यायवान् होता है उसे द्रव्य कहते हैं।[31]
आचार्य कुन्दकुन्द का ही अनुसरण करते हुए आचार्य उमास्वाति ने अपने तत्त्वार्थ सूत्र के पाँचवे अध्याय में द्रव्यों का वर्णन करते हुए उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त को सत् तथा सत् और गुणपर्यायवान् को द्रव्य कहा है।[32]

द्रव्य के भेद – जैन ग्रन्थों में षड् द्रव्यों का वर्णन किया गया है –

जीवद्रव्येण संयुक्ता द्रव्या भवन्ति षट्।
कालद्रव्यात् विनाप्येत् पञ्चास्तिकायका मताः।।

अर्थात् यदि जीव को धर्म, अधर्म, आकाश, काल तथा पुद्गल के साथ मिला लिया जाये तो ये ही धर्म, अधर्म, आकाश, काल पुद्गल तथा जीव ये छह द्रव्य कहलाते है। इनमें से काल द्रव्य को छोड़कर शेष पाँच द्रव्य अस्तिकाय कहलाते हैं।[33]

(1) जीव द्रव्य – ''चेतना लक्षणो जीवः'' जिसमें चेतना अर्थात् जानने देखने की शक्ति पायी जाये, उसे जीव कहते हैं।[34] जैन धर्म में प्रतिपादन किया हुआ जीव और वेदान्त में कहे जाने वाले ब्रह्म ये दोनों एक नहीं है। ब्रह्म एक और अद्वितीय है परन्तु जैन सिद्धान्तकारों ने अपने सिद्धान्त के अनुसार असंख्यात माना है।
जीव और सांख्य मत के पुरुष एक नहीं हैं, क्योंकि जीव नित्य शुद्ध और मुक्त नहीं है। जीव के बन्धन सत्य हैं। जैन अनुयायियों के जीव और न्याय वैशेषिक के आत्मा ये दोनों एक नहीं है। क्योंकि जैन मत के जीव जड़ नहीं है, बल्कि साक्षात् कर्त्तत्व है। जैनियों के जीव और बौद्ध मत का क्षणिक विज्ञान ये दोनों एक नहीं हैं क्योंकि जीव सत्य और नित्य पदार्थ है।[35]

(2) धर्म द्रव्य – धर्म द्रव्य असंख्यात प्रदेश वाला और अमूर्त है। जिस प्रकार मछलियों के चलने में पानी सहायक होता है उसी प्रकार यह धर्म द्रव्य भी जीव और पुद्गलों के गमन करने में सहायक होता है।[36]
चलते हुए जीव तथा पुद्गलों को चलने में सहकारी धर्म द्रव्य होता है। इसका दृष्टान्त यह है कि जैसे मछलियों के गमन में सहायक जल है। परन्तु स्वयं ठहरे हुए जीव पुद्गलों को धर्म द्रव्य गमन नहीं कराता। जैसे सिद्ध भगवान् अमूर्त हैं, किया रहित हैं तथा किसी को प्रेरणा भी नहीं करते, तो भी मैं सिद्ध के समान अनन्त ज्ञानादि गुणरूप हूँ, इत्यादि व्यवहार से सविकल्प सिद्ध भक्ति के धारक और निश्चय से निर्विकल्पक ध्यान रूप अपने उपादान कारण से परिणत भव्य जीवों को वे सिद्ध भगवान् सिद्ध गति में सहकारी कारण होते हैं – ऐसे ही किया रहित, अमूर्त प्रेरणा रहित धर्म द्रव्य भी अपने उपादान कारणों से गमन करते हुए जीव तथा पुद्गलों को गमन में सहकारी कारण होता है। जैसे मत्स्य आदि के गमन में जल आदि सहायक कारण होने का लोक प्रसिद्ध दृष्टान्त है, यह अभिप्राय है।[37]

(3) अधर्म द्रव्य – अधर्म द्रव्य अमूर्त है, किया रहित है, और जिस प्रकार पथिकों के ठहरने में छाया सहायक होती है उसी प्रकार यह अधर्म द्रव्य भी जीव पुद्गलों के ठहरने में सहायक होता है। यद्यपि निश्चयनय से आत्म अनुभव से उत्पन्न सुख अमृत रूप जो परम स्वास्थ्य है वह निज रूप में स्थिति का कारण है, परन्तु मैं सिद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, अनन्तज्ञान आदि गुणों का धारक हूँ, शरीर प्रमाण हूँ, नित्य हूँ, असंख्यात् प्रदेशी हूँ तथा अमूर्त्त हूँ, सिद्ध भक्ति के रूप से पहले सविकल्प अवस्था में सिद्ध भी जैसे भव्य जीवों के लिए बहिरंग सहकारी कारण होते हैं उसी तरह अपने–अपने उपादान कारण से अपने आप ठहरे हुए जीव पुद्गलों को अधर्म द्रव्य ठहरने का सहकारी कारण होता है। लोक व्यवहार से जैसे छाया अथवा पृथ्वी ठहरते हुए यात्रियों आदि को ठहरने में सहकारी होती है उसी तरह स्वयं ठहरे हुए जीव पुद्गलों के ठहरने में अधर्म द्रव्य सहकारी होता है।[38]

(4) आकाश द्रव्य – जो जीवादिक समस्त पदार्थों को जगह दे, उसे आकाश कहते है। आकाश के दो भेद हैं – एक लोक आकाश तथा दूसरा अलोक आकाश। जो समस्त द्रव्यों से भरा हुआ है और जिसमें असंख्यात् प्रदेश है उसको लोक आकाश कहते है। इसका कभी नाश नहीं होता। अलोक आकाश में अनन्त प्रदेश है वह अकेला है। उसमें अन्य कोई द्रव्य नहीं है। वह अमूर्त है, नित्य है और जैन शास्त्रों के द्वारा ही चतुर पुरुषों को उसका ज्ञान होता है।

(5) काल द्रव्य – घड़ी, घण्टा, दिन आदि को व्यवहार काल कहते हैं। द्रव्यों की पर्यायों को बदलने वाला यह व्यवहार काल ही है। यह व्यवहार काल अनित्य है और सूर्य चन्द्रमा आदि घूमते हुए ज्योतिषी देवों के विमानों से मालूम पड़ते है।[39]
जैन दर्शन में काल को एक स्वतन्त्र द्रव्य माना गया है। इसका एक दूसरा नाम अद्धासमय भी है, जो व्यवहार काल की दृष्टि से दिया गया है। अद्धासमय का अर्थ होता है, सूर्य आदि की किया से अभिव्यक्त होने वाला समय। कुछ श्वेताम्बर आचार्य काल को स्वतन्त्र द्रव्य नहीं मानते इसलिए तत्त्वार्थ सूत्र में 'कालश्च' ऐसा पाठ न होकर 'कालश्चेत्येके' ऐसा पाठ है।[40]

(6) पुद्गल द्रव्य – जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण होता है उसे पुद्गल कहते हैं।[41] जिसमें पूरण (पूरना, भरना, पूर्ति, पुष्टि, वृद्धि) और गलन (गलना, क्षीण होना, कृशता, हानि, न्यूनता) हो उसे भी पुद्गल कहते है। इसी को स्पष्ट करते हुए अकलंकदेव ने कहा है – जो भेद (बिछुड़ना) संघात (मिलना) और भेद संघात (मिलना–बिछुड़ना) के पूरण और गलन को प्राप्त हों वे पुद्गल है।
पूरण और गलन को विज्ञान की भाषा में फ्यूजन व फिशन या इण्टिग्रेशन व डिसइण्टिग्रेशन कहते हैं। एटम बम को फिशन बम और हाइड्रोजन बम को फ्यूजन बम इसी कारण कहा गया है। एटम बम में एटम के टुकड़े–टुकड़े हो जाते हैं तब शक्ति उत्पन्न होती है और हाइड्रोजन बम में एटम परस्पर मिलते हैं तब उसमें शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। स्पर्श, रस और वर्ण इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करने योग्य हैं क्योंकि वे इन्द्रियों के विषय हैं।

पुद्गल के भेद – पुद्गल के दो भेद हैं – अणु और स्कन्ध। जिसका दूसरा भाग नहीं हो सकता है। दो, तीन, संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त परमाणुओं के समूह को स्कन्ध कहते हैं।[42]

निष्कर्ष – उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जीव कर्मों के समस्त पाप नष्ट हो जाने को मोक्ष कहते हैं। मुनियों के तप चारित्र से वह मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिये मनुष्य को जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन सप्त तत्त्वों और जीव, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल इन षड् द्रव्यों का मनुष्य को मन, वचन एवं काय के साथ पालन करना चाहिए क्योंकि ये मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करने वाले है।

सन्दर्भ

1. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/7–8, 16–18 प्रकाशक – श्रावकाचार संग्रह (भाग–2) जैन संस्कृति संरक्षक संघ (जीवराज जैन ग्रन्थमाला) संतोष भवन, 734, फलटन गली, सोलापुर–2
2. आ0 अमितगतिः अमितगति श्रावकाचार 3/10–15, 27–28 प्रकाशक – श्रावकाचार संग्रह (भाग–1) श्री जैन संस्कृति संरक्षक संघ, (जीवराज जैन ग्रन्थमाला) 410, दक्षिण कसबा सोलापुर–7

3. आ0 रविषेणः पद्मचरित 2/159–60
4. डॉ0 रमेश चन्द जैनः जैन धर्म दर्शन, पृ0 230–31, प्रकाशक – भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी सांगानेर, जयपुर, (राजस्थान)
5. आ0 रविषेणः पद्मचरित 2/156
6. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/21–22
7. डॉ0 नरेन्द्र कुमार जैन शास्त्रीः जैनदर्शन में रत्नत्रय का स्वरूप, पं0 15
8. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/23
9. आ0 अमितगतिः अमितगति श्रावकाचार 3/35–37
10. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/24–30
11. आ0 जिनसेनः हरिवंश पुराण 58/57
12. आ0 अमितगतिः अमितगति श्रावकाचार 3/51–53 प्रकाशक – श्रावकाचार संग्रह (भाग–1) श्री जैनसंस्कृति संरक्षक संघ, (जीवराज जैन ग्रन्थमाला) 410, दक्षिण कसबा सोलापुर–7
13. आ0 उमास्वातिः तत्त्वार्थ सूत्र 6/4, श्रावकाचार संग्रह (भाग–3) प्रकाशक – श्री जैन संस्कृति संरक्षक संघ, (जीवराज जैन ग्रन्थमाला) 410, दक्षिण कसबा सोलापुर–7 (राजस्थान)
14. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/32–33
15. आ0 अमितगतिः अमितगति श्रावकाचार 3/54
16. आ0 पूज्यपादः सर्वार्थसिद्धि–टीका 8/1
17. आ0 जिनसेनः हरिवंश पुराण 58/196
18. वही 58/197
19. आ0 अमितगतिः अमितगति श्रावकाचार 3/55–58
20. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/34
21. आ0 जिनदेवः भव्य धर्मोपदेश उपासकाध्ययन 2/192 श्रावकाचार संग्रह (भाग–3), प्रकाशक – श्री जैन संस्कृति संरक्षक संघ, (जीवराज जैन ग्रन्थमाला) 410, दक्षिण कसबा सोलापुर–7 (राजस्थान)
22. आ0 जिनसेनः हरिवंश पुराण 58/299–300
23. आ0 अमितगतिः अमितगति श्रावकाचार 3/59
24. आ0 जिनदेवः भव्य धर्मोपदेश उपासकाध्ययन 2/193
25. आ0 अमितगतिः अमितगति श्रावकाचार 3/60
26. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/34
27. डॉ0 रमेश चन्द जैनः जैन धर्म दर्शन, पृ0 317, प्रकाशक – भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी सांगानेर, जयपुर, (राजस्थान)
28. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/34–41
29. आ0 जिनसेनः हरिवंश पुराण 58/18
30. आ0 उमास्वातिः तत्त्वार्थ सूत्र 1/1
31. आ0 कुन्दकुन्दः प्रवचनसार–3
32. पं0 कैलाशचन्द्र शास्त्री :जैन सिद्धान्त, पृ0 12
33. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/29
34. आदि पुराण 24/92
35. सुमेरचन्द्र दिवाकरः भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन, पृ0 7 प्रकाशक – जैन साहित्य समिति, कूचा बुलाकी बेगम, एस्प्लेनेट रोड़, दिल्ली–6
36. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/23
37. सुमेरचन्द्र दिवाकरः भगवान् महावीर और उनका तत्त्व दर्शन, पृ0 15
38. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/24
39. आ0 सकलकीर्तिः प्रश्नोत्तर श्रावकाचार 2/25–27
40. आ0 उमास्वातिः तत्त्वार्थाधिगम भाष्य 5/38
41. आ0 उमास्वातिः तत्त्वार्थ सूत्र 5/23
42. डॉ0 रमेश चन्द जैनः जैन धर्म दर्शन, पृ0 257–58, प्रकाशक – भगवान ऋषभदेव ग्रन्थमाला, श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघीजी सांगानेर, जयपुर, (राजस्थान)